NJESR/March2025/Volume-7/Issue-3 E-ISSN-2582-5836
DOI-10.53571/NJESR.2025.7.3.48-60

प्राचीन भारतीय कला में निहित प्रतीकात्मकता

डॉ. शंकर शर्मा
सहायक आचार्य
चित्रकला विभाग, से.म.बि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नाथद्वारा, राजस्थान, भारत

(Received -18 February 2025/Revised-28 February 2025/Accepted-7 March 2025/Published -25 March 2025)

सारांश

विश्व कला जगत के संपूर्ण दृश्यावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अनादि काल से ही सभी महान सभ्यताएं अलग-अलग उद्देश्यों हेतु कलाओं का आश्रय लेती रही है। जहां मिस्र के पिरामिडों का निर्माण मृतकों की सुरक्षा के लिए था ,वही यूनानी कला, आदर्श मानवीय रूपों के निर्माण का उद्देश्य लेकर चली। तत्पश्चात ईसा तथा ईसाई धर्म का प्रचार ही यूरोपीय कला का मूल उद्देश्य हो गया। इसी तरह भारतीय कला दर्शन का मूल मंत्र भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर प्रयाण रहा है और यहीं यहां की कला का मूल उद्देश्य भी रहा। बौद्ध, वैष्णव, जैन, शैव आदि सभी धर्मो के उपदेशों के प्रचार हेतु कला को माध्यम बनाया गया। जिसका उत्तम उदाहरण प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय कलाएं हैं।

प्राचीन भारतीय कला में प्रतीकात्मकता विविध रूपों में दृष्टव्य है, जहां अष्टमांगलिक प्रतीको के रूप में यह अपना स्पष्ट रूप दर्शाते हैं, वहीं विविध पशु आकृतियों में, मुद्राओं में, ज्यामितीय आकृतियों एवं वर्ण प्रतीको के रूप में संपूर्ण भारतीय कला में इनका प्रसार दिखाई देता है।

कूटशब्द : - चतुर्गति - आत्मा के चार प्रकार के पुनर्जन्म, तिर्यक - तिरछा, टेढ़ा, दोहद - गर्भवती स्त्री कि अभिलाषा, निहित - छिपा हुआ, शामिल, नन्दीपद - बैल का खुर या बैल के पैर के निशान

प्रस्तावना -

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतीकों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ तक कि यदि हम यह कहें कि जाने-अनजाने हम प्रतीकों की दुनिया में ही जीते हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भाषा वैज्ञानिकां का अनुमान है कि मनुष्य द्वारा उच्चरित प्रारम्भिक ध्वनियाँ भी प्रतीक रूप ही रही होंगी, इस प्रकार जब से मनुष्य ने प्रथम शब्द का उच्चारण किया, प्रतीक निर्माण की यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई जो निरन्तर विकसित होती गई और मनुष्य ने गणित, कला, विज्ञान तथा उपासना आदि सभी क्षेत्रों में अनगिनत प्रतीकों का निर्माण किया जो मानव संस्कृति के विकास व उन्नयन में महत्त्वपूर्ण सहायक सिद्ध हुए।

कला व साहित्य में प्रतीकों का कार्य अनुभूति को व्यवस्थित रूप देना तथा सूक्ष्म भावों का प्रसार करना होता है। यहाँ यह सामान्यतः अप्रस्तुत कथन को संकेत रूप में अभिव्यक्त करते हैं व

व्यंजनाश्रित होते हैं। इनमें भाव एक साथ स्पष्टता व अस्पष्टता लिये रहते हैं जो अपनी अमूर्तता के साथ कला में सौन्दर्य सृजन् का आधार बनते हैं।

भारत के प्रागैतिहासिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक केन्द्रों से चित्रकला, मूर्तिकला व स्थापत्य कला के जो अवशेष मिले हैं, उनसे उस युग की महान् कला उन्नति का पता चलता है। पाषाण पर उत्कीर्ण ये चित्र मनुष्य की कलारुचि के प्रारम्भिक अवशेष के रूप में हमारे सामने हैं, जिन्हें देखने से पता चलता है कि ललित कलाएँ प्रारम्भ से ही मनुष्य की चेष्टा और प्रवृत्तियों को व्यक्त करने का माध्यम रही है। इस युग की मृण्मूर्तियाँ जहाँ आदिमानव के उत्तम मूर्तिकार होने की कहानी कहती हैं, वहीं वृषभ तथा पशुपति आदि की मुद्राओं द्वारा उसकी निपुण चित्रकारिता के दर्शन भी होते हैं।

आदिमानव के सौन्दर्य, प्रेम को व्याख्यायित करते शिला पर उत्कीर्ण चित्र, काष्ठ, धातु तथा मिट्टी की मूर्तियाँ तत्कालीन जनजीवन व संस्कृति की झांकी प्रस्तुत करते हैं तो हाथी, चीता, बाघ, रीछ, वराह, हिरण आदि का शिकार करते, धनुष बाण लिये संघर्ष करते, पशु - चराते, छत्ते से शहद निकालते आदि अनेक दृश्यों से सम्बन्धित चित्र उसके संघर्षपूर्ण व उल्लासमयी जीवन को जीवन्त अभिव्यक्ति देते हैं। (चित्र संख्या 1)

(चित्र संख्या 1)

इन चित्रों में भावाभिव्यक्ति हेतु रेखाओं के साथ प्रतीकात्मकता को भी विशेष स्थान मिला है। चूंकि आदिकाल में मानव पूर्णतया प्रकृति के वशीभूत एवं उससे भयाक्रांत रहा, अतः मंगल की कामना तथा सुरक्षा हेतु उसने प्रकृति के पीछे किसी अदृश्य शक्ति की कल्पना कर डाली तथा प्राकृतिक उपादानो जैसे वृक्ष, जल, पशु-पक्षी आदि में उस रहस्यमयी शक्ति का निवास मान पूजा आरम्भ कर दी। इस तरह प्रागैतिहासिक चित्रों के प्रतीक प्रायः पूजा के कार्यों से सम्बन्धित अथवा जादू-टोनों से सम्बन्धित रहे हैं।

भारत की प्राचीनतम एवं विकसित सभ्यता में अनेक ऐसे प्रतीक प्राप्त हैं, जो किसी न किसी विचार एवं वस्तु की ओर संकेत करते हैं। सामान्यतया इनमें धर्म एवं दर्शन के रहस्य छिपे रहते हैं, जो तत्कालीन समाज में प्रचलित विचारों के द्योतक हैं।[1]

प्रागैतिहासिक युग के पश्चात् हम वैदिक युग में आते हैं। कला, साहित्य और जीवन के समस्त मूल विचार जो भारतीय संस्कृति के पोषक हैं, वैदिक युग में ही स्फुट हुए। यद्यपि इस

समय की कलाकृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं तथापि कला सम्बन्धी भाव सहस्त्रों की संख्या में पाए जाते हैं, इस समय की आर्य जाति के लोग बढ़ईगिरी, चर्मशिल्प, गृहनिर्माण, वस्त्र बुनाई तथा रथ बनाने की कला में निपुण थे, पर मूर्तिकला व चित्रकला में भी वे निपुण थे, इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतः वैदिक युगीन शिल्प के अभाव में तत्कालीन साहित्य से ही आर्यों की आरम्भिक कला तथा सौन्दर्य चेतना का अनुमान हमें लगाना पड़ता है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि समग्र रूप में आर्यों की कला प्रतीकात्मक ही रही।

इस समय आर्य-सभ्यता का सिन्धुघाटी की द्रविड़-सभ्यता से सम्पर्क हुआ और एक ऐसी आरम्भिक भारतीय सुसंस्कृत एवं नागर कला का जन्म हुआ जिसमें आर्य प्रतीकता एवं द्राविड़ प्रतिरूपण वृत्ति थी।

विभिन्न माध्यमों से सौन्दर्याभिव्यक्ति करने वाला वैदिक युग अपने ढंग में अकेला था। इस युग में संगीत, मूर्ति, स्थापत्य और चित्रकला अपने पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा आश्चर्यजनक रूप में विकसित हुई तथा परवर्ती युगों जैसे शिशुनाग, मौर्य तथा गुप्तों के समय जिस महान् कला की समृद्धि हुई, उसके सूत्र भी इसी युग में निर्मित हुए।

इस युग में वैदिक पूजा तथा परम्परा में इतने अधिक देवताओं और प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के रूप कल्पित हुए कि उन्हें देखकर सहज ही वैदिक ऋषियों तथा कलाकारों की चित्रांकन कल्पना से हम मुग्ध हो जाते हैं। उस परमब्रह्म को अर्थात् समग्रता को प्रकट करने के लिये जो कुछ मानव कल्पना में आ सकता है, उन सबका प्रयोग वैदिक ऋषियों ने प्रतीक निर्माण में किया। इस समय के जितने भी वेद, पुराण तथा अन्य ग्रंथ रहे, उनमें भी कला के प्रतीकात्मक प्रतिमानों के द्वारा ही परमेश्वर की प्राप्ति का एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग सुझाया गया है एवं कला को विराट शक्ति का पर्याय मानकर परेश्ंवर के पर्याय 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की अवधारणा को उसमें समाहित कर लिया गया है।

प्राचीनकाल में अन्य सभी देशों की तरह भारत में भी मानव जीवन के नाना पहलू, धर्म से अनुप्राणित रहे हैं। मनुष्य के विविध क्रियाकलाप धर्म से सम्पृक्त थे व कला का मुख्य स्थान भी धर्म के ही अन्तर्गत था। धार्मिक कृत्यों को सजीव तथा महत्त्वपूर्ण बनाने के लिये प्रायः कला का आश्रय लिया जाता था। समस्त प्राचीन चित्रकला एवं मूर्तिकला इसी उद्देश्य की पूर्ति करती दिखाई देती है।

भारतीय धर्म तथा दर्शन में साकार और निराकार ब्रह्म की अवधारणा मुख्य रही है। साकार ब्रह्म की कल्पना में ईश्वर या देवी-देवताओं के भौतिक स्वरूप का निरूपण प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होता है, जिसे चित्रकारां अथवा शिल्पकारों ने रूप प्रदान किया। जब से साकार ब्रह्म की अवधारणा ने जन्म लिया, तभी से कला का धर्म में महत्त्व और बढ़ गया। पुराशास्त्रों में देवी-देवताओं की प्रकृति, उनके शक्ति स्वरूप एवं मुद्रा इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसके आधार पर प्राचीन कलाकारों ने उनका एक आदर्श व प्रतीकात्मक रूप निर्मित किया इसका उदाहरण गुप्तकालीन विष्णु की मूर्ति के रूप में हमारे सामने है।

श्री विष्णु के इस स्वरूप का आधार विष्णु पुराण में उद्धृत निम्न कथन है -

आत्मानमस्य जगतो निर्लेपम्गुणामलम्।
विभर्ति कोस्तुभमणिस्वरूप भगवान्हरिः।।
श्री वत्ससंस्थानधरनन्तेन समाश्रितम्।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे।।
भूतादिमिन्द्रियादि च द्विधाहंकारमीश्वरः।
बिभर्ति शंखरूपेण शार्गरूपेण च स्थितम्।।
चलत्स्वरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलंम्।
चक्रस्वरूपं च मनों धत्ते विष्णुकरा स्थितम्।।
पंचरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः।
सा भूतहेतुसंधाता भूतमाला च वै द्विज।।[2]

इसके अनुसार इस जगत के निर्लेप तथा निर्गुण और निर्मल आत्मा को कौस्तुभ मणि, बुद्धि को गदा, तामस और राजस अहंकार को शंख एवं धनुष (शार्ङ्ग) मन को चक्र, वैजयंती मालाओं को पंचतन्मात्राओं और पंचभूतों को संघात, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बाण समूह तथा विद्यामय ज्ञान को खड्ग के द्वारा प्रस्तुत करता विष्णु का स्वरूप सम्पूर्ण रूप में सत्त्वगुण का प्रतीक है।

इसी प्रकार ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध सभी धर्मों में प्राचीन साहित्य में उद्धृत विवरणों का आधार लेकर कई दैवीय स्वरूपों की रचना प्राचीनकाल में कलाकारों द्वारा की गई। प्राचीनकाल में मनुष्य मोक्ष को ही अपना परम लक्ष्य मानता था और उसी से प्रेरित होकर सभी कार्य करता था। इस समय जीवन के सम्पूर्ण क्रिया कलाप को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चतुर्वर्गों - में विभाजित किया गया था। इन चतुर्वर्गों का प्रयोजन भी मोक्ष की प्राप्ति हेतु ही था और मोक्ष का अर्थ जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर परमब्रह्म से एकात्म स्थापित कर लेना था। कला को भी इस समय इसी मोक्ष प्राप्ति के एक साधन के रूप में देखा गया जो कि वात्स्यान के इस कथन से स्पष्ट है - 'कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थ मोक्षदम्' इसके साथ ही प्राचीन मूर्तिकला व चित्रकला में देवाकृतियों द्वारा उस आध्यात्मिक संदेश को भी व्यक्त किया गया है जो उनका पृथक्-पृथक् निजी प्रयोजन है। गुप्तकालीन शिल्प, अवलोकितेश्वर, प्रज्ञापरामिता, बोधिसत्त्व, पद्मपाणि, शिव, विष्णु तथा महावीर आदि की मूर्तियाँ इसी के उदाहरण हैं। यद्यपि इस समय की सभी शिल्पाकृतियाँ धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत रहीं व उनमें धर्म व दर्शन ही मुख्य रूप से परिलक्षित होते हैं, लेकिन शिल्पित कौशल व रूप-विधानों की दृष्टि से भी यह कला पर्याप्त उन्नत रही।

प्राचीन युग की भारतीय कलाओं में मोटे तौर पर चार प्रकार के प्रतीक दिखाई देते हैं। जैसे- मांगलिक प्रतीक, धार्मिक प्रतीक, देवत्व प्रतीक तथा राजत्व के प्रतीक। ये प्रतीक पुष्प, लता, वृक्ष, पशु-पक्षी, सरीसृप, उपकरण, पात्र, शस्त्र अथवा डिजाईन के माध्यम से रूपायित किये गए, जैसे - पद्म, माला (पुष्प), बोधिवृक्ष, कल्पलता, कल्पवृक्ष, श्रीवृक्ष (लता वृक्ष), हस्ती, अखः सिंह (पशु), गरुड़ (पक्षी), नाग (सरीसृप), मीन, मिथुन (जलचर), आसन, छत्र, चामर, दण्ड, पादपीठ,

दर्पण, शंख, चक्र (उपकरण), कलश (पात्र), अंकुश, खड्ग, वज्र (शस्त्र), और स्वस्तिक, श्रीवत्स, त्रिरत्न, पचांगुल (डिजाईन) के रूप में।[3]

प्राचीन भारतीय कला में प्रतीकात्मकता विविध रूपों में दृष्टव्य है, जहां अष्टमांगलिक प्रतीको के रूप में यह अपना स्पष्ट रूप दर्शाते हैं, वहीं विविध पशु आकृतियों में, मुद्राओं में, ज्यामितीय आकृतियों एवं वर्ण प्रतीको के रूप में संपूर्ण भारतीय कला में इनका प्रसार दिखाई देता है।

अष्टमांगलिक प्रतीक

स्वस्तिक :

(चित्र संख्या 2)

स्वस्तिक मानव जीवन का एक विलक्षण प्रतीक है। भारत में स्वस्तिक की परम्परा अत्यन्त प्राचीनकाल से लेकर आज तक निरन्तर पाई जाती है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति तथा पुरुष दो तत्त्वों के साथ नरक, तिर्यक, मनुष्य व देव आदि चतुर्गति रूप तथा संसार में घूमने वाले जीवन सम्बन्धी महासत्त्व का यह एक प्रतीक है। इसके मध्य में खड़ी और आड़ी दो रेखाएं पुरूष और प्रकृति, जीवन और मृत्यु, चेतनय और जड़, वृक्ष व माया, सत्य और असत्य, अमूर्त तथा मूर्त आदि विश्व के दो सनातन तत्त्वों का निर्देश करती है। इन रेखाओं के चारों छोरां पर चार भुजाएं चार गतियों का स्मरण कराती है।[4] पूर्ण रूप से यह कल्याण का प्रतीक माना जाता है।[5] (चित्र संख्या 2)

श्रीवत्स :

श्रीवत्स न केवल भारतीय कला का, वरन् भारतीय जीवन का भी एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक रहा है। इसकी गणना अष्टमांगलिक चिह्नों में की गई है। स्वस्तिक जहाँ सार्वभौमिकता का प्रतीक माना जाता है, वहीं श्रीवत्स सुख- सम्पन्नता का प्रतीक है। भारतीय शिल्पकला में लक्ष्मी व श्रीवत्स के अभिप्राय प्रायः साथ-साथ पाए जाते हैं और दोनों को ही विष्णु के वक्ष पर आसीन दिखाया जाता रहा है। अतः यह लक्ष्मी के समान ही सुख सम्पन्नता के मांगलिक चिह्न के रूप में स्थापित हुआ है।[6]

त्रिरत्न :

त्रिरत्न प्रतीक को बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण विचारधाराओं में सम्यक् रूप से समाहित किया गया है। जहाँ बौद्ध विचारधारा में यह बुद्ध, धर्म व संघ के संगठित स्वरूप से सम्बन्धित है तो जैन विचारधारा में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् श्रद्धा व सम्यक् आचरण से सम्बन्धित है। जबकि ब्राह्मण

विचारधारा में यह सृजन्, पालन व संहार, ब्रह्मा, विष्णु व महेश, सत-रज-तम के सर्वव्यापी अभिप्रायों का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें धार्मिकता व मांगलिकता का भाव समन्वित रूप से अभिव्यक्त हुआ है।[7]

चक्र :

यह ब्रह्माण्ड, सूर्य, गति, काल, सृष्टि, आवागमन, धर्म और कर्म का विलक्षण प्रतीक माना जाता है। स्व. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने चक्र की इसी विविधरूपी प्रतीकात्मकता को अत्यन्त संक्षेप में पूर्ण रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उन्होंने ब्रह्म या विश्वात्मा को ब्रह्माण्ड चक्र, ऋतु अथवा संसार संचालन को संसार चक्र व मानव जीवन को भवचक्र की संज्ञा दी। चक्र के दो मुख्य अंग होते हैं, केन्द्र और परिधि। डॉ. अग्रवाल के अनुसार ये दोनां दो भिन्न प्रवृत्तियों के परिचायक हैं, केन्द्र विश्राम का तो परिधि गति का चक्र, दोनों में समन्वय व सामंजस्य स्थापित करने वाला अभिप्राय है।[8] भारतीय कलाओं में चक्र, जैन, बौद्ध व ब्राह्मण तीनों ही धर्मां में प्रमुख प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कलश :

(चित्र संख्या 3)

भारतीय कलाकारों ने कलश का बहुविध उपयोग किया है, जैसे 'पद्मगच्छ से परिपूर्ण कलश' 'श्री लक्ष्मी के पद्मासन का आधार कलश', स्तम्भ का आधार एवं शीर्ष कलश, हाथी से अभिसिंचित कलश, जैन आयग पट्टी को सजाने वाला अष्टमंगल कलश और हिन्दू मन्दिरों का शिखर कलश आदि-आदि; भरहुत, सांची, अमरावती, मथुरा, कपिशां, नागार्जुन कौण्डा, कौशाम्बी आदि विभिन्न स्थानों के उत्कीर्ण शिल्प में पूर्णकलश अथवा मंगलकलश के उपर्युक्त विभिन्न मनोहारी रूप अंकित दिखाई देते हैं।[9] भारतीय कला में यह पूर्णकलश, सम्पूर्णता, सम्पन्नता अथवा संवृद्धि के साथ सौन्दर्य व सृजन् के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है। (चित्र संख्या 3)

पंचांगुलांक :

प्रमुख भारतीय कला प्रतीकों में पंचांगुलांक की भी गणना की जाती है। दाहिने हाथ की पाँचों खुली अंगुलियों की छाप या हाथ के पँजे को पंचांगुलांक कहा जाता है। सदियों पुराने होने

पर भी जिन कतिपय मांगलिक प्रतीकों की परम्परा आज भी भारतीय लोक-जीवन में प्रचलित हैं, उनमें स्वस्तिक, कलश आदि के साथ पंचांगुलांक भी सम्मिलित है।[10] पंचतत्त्वों, जीवन, अभय आदि के अर्थों में इसका प्रयोग भारतीय कलाओं में हुआ है।

वृक्ष :

बोधिवृक्ष, श्रीवृक्ष, कल्पवृक्ष तथा ज्ञानवृक्ष के रूप में वृक्ष भारतीय साहित्य और कला का एक अनुपम अभिप्राय रहा है। वृक्षों के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। प्राचीन भारत में सर्वत्र वृक्ष प्रतीकों की महत्ता स्वीकार की गई थी तथा देवताओं के समान इनकी पूजा दीर्घकाल से ही की जाती रही है, कहीं फल प्रदान करने वाले देवता के रूप में तो कहीं देवताओं के निवास स्थान के रूप में[11] इस प्रकार भारतीय कलाओं में वृक्ष प्राथमिक पूजा प्रतीक के रूप में स्थान लिये हुए है।

पद्म (कमल) :

कमल भारतीय साहित्य, दर्शन और कला का एक बेजोड़ अभिप्राय है। यह जीवन का सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् रूप है। भारतीय दृष्टिकोण में पद्म पृथ्वी का प्रतीक माना गया है। पद्मपुराण में कहा गया है कि विष्णु की नाभि से जो पद्म पहले उत्पन्न हुआ, वह पृथ्वी रूप था। वह पद्म ही रसादेवी या पृथ्वी कहा जाता है। पृथ्वी सम्पूर्ण चराचर जगत को जन्म देती है व जन्मदाता है। इसलिये पद्म भी सृष्टि का प्रतीक है।[12] साथ ही यह दिव्यावतार का भी प्रतीक माना गया है, क्योंकि वह जल में स्वयं उत्पन्न होकर स्वयंभू है।[13] इसके साथ ही यह कीचड़ में खिलकर उससे विरक्त व शुद्ध रहता है। अतः आध्यात्मिकता का प्रतीक भी माना जाता है। अपनी इन्हीं अर्थबोधगम्यता तथा विविध रूपी प्रतीकात्मकता के ही कारण भारतीय कला में सज्जा के साधन के रूप में भी पद्म का सर्वाधिक उपयोग किया गया है।

मीन मिथुन :

यह भारतीय जीवन में युग-युगों से एक प्रतिष्ठित प्रतीक माना जाता रहा है। शोभा, सौभाग्य, आरक्षा एवं सृजन् के लिये मीन की महत्ता स्वीकार की गई है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज तक हमारे जीवन में मीन के माध्यम से कल्याण की कामना की जाती रही है।[14] यह शुभ शकुन, सच्चे प्रेम व नारी-पुरुष के एकात्म स्वरूप के प्रतीक के रूप में भारतीय कला में प्रयुक्त हुआ है।

दोहद :

(चित्र संख्या 4)

भरतमुनि के अनुसार गर्भवती स्त्री की अभिलाषा को दोहद तथा उस अभिलाषा वाली स्त्री को दोहदवती कहते हैं। दोहद अभिप्राय की यह मान्यता भारतीय मूर्तिकला में एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रतीक के रूप में उत्कीर्ण की गई है। इस प्रतीक में एक युवती को वृक्ष के नीचे अंकित किया गया है। यह युवती कभी सीधी खड़ी होकर वृक्ष की डाली को पकड़े है या फूल तोड़ती है तो कभी वह एक हाथ से वृक्ष की एक शाखा को पकड़कर दूसरे से वृक्ष के तने को लपेट कर आगे को लटकती या झूलती है। ऐसा करने में प्रायः वह अपने एक पैर से वृक्ष के तने पर पाद प्रहार भी करती है।[15] सांची, भरहुत, मथुरा, बौद्धगया तथा जमसोत आदि स्थानों के शिल्पों में दोहद एक प्रमुख प्रतीक के रूप में उत्कीर्ण किया गया है। (चित्र संख्या 4)

भारतीय कला यहाँ की धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक संस्कृति का संमिश्रण रही है। जीवन के गंभीर एवं गूढ़ तात्त्विक विवेचनों की प्रतीकात्मक व्याख्या हमें भारतीय कला में सर्वत्र ही दिखाई देती है, उपर्युक्त भारतीय कला प्रतीक भी ऐसी ही तात्त्विक विवेचना से परिपूर्ण है। इनके अतिरिक्त अन्य कई रूप, मुद्राएँ, आयुध, पशु- आकृतियाँ, ज्यामितीय आकृतियाँ प्रतीकार्थों को लिये भारतीय कलाओं में दिखाई देती हैं जिन्हें निम्न बिन्दुओ में वर्गीकृत कर विवेचित किया जा सकता है-

मुद्राएँ एवं प्रतीकार्थ :

मुद्राओं का प्रयोग भारतीय कला में अधिक हुआ है। लेकिन इनकी परम्परा स्पष्ट और व्यवस्थित रूप में नहीं चल पायी है। स्थान-स्थान पर धार्मिकां और कलाकारों ने इनके नए अर्थ लगाए हैं। प्रायः हाथों की स्थिति को मुद्रा कहते हैं, यथा खड़े हुए शरीर की स्थिति को स्थान और बैठने की स्थिति को आसन कहा जाता है। यह स्थान मुद्रा आसन विधान ही भारतीय कला में आंतरिक भावों को व्यक्त करने का मुख्य साधन रहा है। (चित्र संख्या-5)

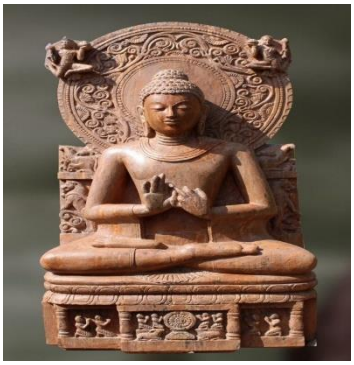

चित्र संख्या-5

विद्वानों ने मुद्राओं को दो भागों में बांटा है 1- अरूप, 2- सरूप। अरूप मुद्राएँ हस्ताभिनय आदि से सम्बन्धित हैं तथा इनमें किसी वस्तु अथवा क्रिया का संकेत मात्र होता है, जबकि सरूप मुद्राओं में आयुध, दैवी, आकृतियाँ एवं उनके वाहन आते हैं।[16] भारतीय कला में प्रयुक्त कुछ प्रमुख मुद्राएँ व उनके प्रतीकार्थ इस प्रकार हैं :

अरूप मुद्रा	:	प्रतीकार्थ
समभंग	:	शांतभाव
त्रिभंग	:	चंचलता
अतिभंग (हस्तमुद्राए)	:	गति
ध्यान मुद्रा	:	एकाग्रचित्तता, शांतभाव
अभय मुद्रा	:	निश्चलता, शांति
वरद मुद्रा	:	शक्ति, अभय
वितर्क मुद्रा	:	पूर्णता
धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा	:	सृष्टि, मति, उत्थान, पतन
वज्र मुद्रा	:	ज्ञान
भूमिस्पर्श मुद्रा	:	ब्रह्मचर्य, समर्पण, त्याग
गोपन मुद्रा	:	रहस्य अनिश्चितता।[17]
सरूप मुद्रा	:	प्रतीकार्थ
परशु	:	रक्षा बंधन, मोक्ष
घंटा	:	क्षण-भंगुरता
धनुषबाण	:	प्रेम, एकाग्रता, बुद्धि, काम
शंख	:	नियम, धर्म, विधि
चँवर	:	गरिमा, उच्चता, अध्यात्म
मणि	:	वैभव, सम्पन्नता
त्रिशूल	:	शक्ति, अधिकार, मन, वचन, कर्म
दर्पण	:	निःसारता, प्रतिबिम्ब, सूर्य
कन्दुक	:	प्राकृतिक नियम, माया की क्रीड़ा
पारा	:	बंधन, प्रेम-पाश
पुस्तक	:	ज्ञान, धर्म-ग्रंथ
खड्ग	:	तप, अज्ञान का नाश, धर्म
वज्र अथवा गदा	:	कठोरता, नियम, दृढ़ता, धर्म
बंशी	:	माया
अग्निपात्र	:	पाप, नाश, संहार।[18]

पशु-पक्षी, आकृतियाँ एवं प्रतीकार्थ :

भारतीय कलाओं में पशु-पक्षी की आकृतियाँ आदि काल से ही विशेष महत्त्व लिये हैं। प्रागैतिहासिक काल में जहाँ इन्हें देवताओं के रूप में पूजा गया तो प्राचीन काल में यह देवी देवताओं के वाहनों के रूप में उनके गुणों व कार्यों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किये गए। यहाँ प्रायः सभी देवी-देवताओं के वाहनां के रूप में विभिन्न पशुओं व पक्षियों को चुना गया है जिनको कहीं दैवी-आकृतियों के साथ तो कहीं स्वतंत्र रूप में भी अंकित किया गया। (चित्र संख्या-6)

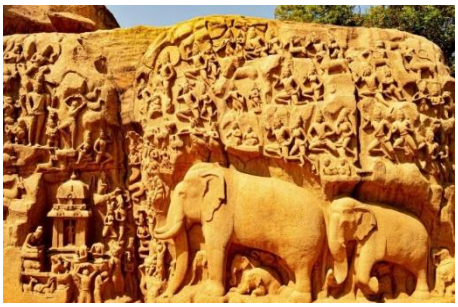

चित्र संख्या-6

भारतीय कलाओं में प्रयुक्त प्रमुख पशु-पक्षियों की आकृतियाँ व उनके प्रतीकार्थ इस प्रकार हैं -

पशु-पक्षी आकृति	:	प्रतीकार्थ
अश्व	:	शक्ति, वासना, युद्ध
हाथी	:	अलैकिक शक्ति, ऐश्वर्य विनम्रता, राजसत्ता, बुद्धिमत्ता, पवित्रता
बैल	:	शक्ति
सर्प	:	पुनर्जन्म, राजसी तत्त्व, शक्ति
शुक	:	प्रेम
कपोत	:	शांति
कपोत-युगल	:	प्रेम
हंस	:	ज्ञान, पुनर्निर्माण
गरुड़	:	गति
मयूर	:	गर्व
उल्लू	:	ज्ञान।[19]

ज्यामितीय रूप एवं प्रतीकार्थ :

भारतीय कलाओं में ज्यामितीय रूपों का अंकन कलाकारों द्वारा सामान्यतः किया गया है, जो प्रायः किन्हीं गूढ़ व निश्चित अर्थों को लिये रहते हैं। इसके साथ ही इन ज्यामितीय आकृतियों को

अलंकरणात्मक रूप में चित्रों को सजाने हेतु भी प्रयोग में लिया गया, जिनके विशेष पैटर्न निर्मित किये गए व तत्पश्चात् उनकी पुनरावृत्ति की गई। (चित्र संख्या-7)

चित्र संख्या-7

ज्यामितीय रूप	:	प्रतीकार्थ
वर्ग	:	भौतिक स्थिरता का प्रतीक
बिन्दु	:	ब्रह्माण्ड की आदि अवस्था का प्रतीक
ऊर्ध्व क्षितिज	:	पुरुष तथा चेतना का प्रतीक
अधोमुख त्रिभुज	:	जडता व नारी तत्त्व का प्रतीक
लम्बे ऊर्ध्व शीर्षवाला त्रिभुज	:	आध्यात्मिक विकास का प्रतीक
वृत्त	:	पूर्णता का प्रतीक, गति का प्रतीक
आयताकार	:	शक्ति स्थायित्व व एकता का प्रतीक।[20]

वर्ण प्रतीक :

मानव मन पर पड़ने वाले रंगों के प्रतीकात्मक प्रभावों के प्रति भारतीय विद्वान् तथा कलाकार शुरू से ही सजग रहे हैं, जिसका उदाहरण विष्णुधर्मात्तरपुराण में देखा जा सकता है। इस प्राचीन ग्रंथ में रंगों के मन पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों का वर्णन किया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि आकृति विशेष के गुणों को ध्यान में रखकर रंगों का प्रयोग करना चाहिये। अजंता के चित्र इसी परम्परा का निर्वाह करते दिखाई देते हैं। (चित्र संख्या-8) इसी ग्रंथ में रंगों का प्रयोग रसों व भावनाओं के आधार पर करने के लिये भी कहा गया है व प्रत्येक रस के अनुसार रंग भी बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

रस	:	प्रतीक रंग
प्रेम	:	गहरा नीला (जैसे विष्णु)
हँसी	:	श्वेत
दया	:	भूरा
शौर्य	:	पीला
गुस्सा	:	लाल

भय : काला

दैवीय भाव : पीला

ईर्ष्या घृणा : नीला, बेंगनी[21]

चित्र संख्या-8

मध्यकालीन भारतीय कला शैलियों तथा प्राचीन बौद्ध व हिन्दू कलाओं में रंगों की यह प्रतीकात्मकता स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है।

इस प्रकार देखा जाए तो प्रतीकात्मकता विभिन्न रूपों में प्राचीन भारतीय कला में कलाकारों की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में सर्वत्र दिखाई देती है। कहीं अदृश्य अगोचर की अभिव्यक्ति के लिये तो कहीं चित्रित भावों के गहन सम्प्रेषण हेतु प्रायः सभी कला-शैलियों व कला युगों में यह विद्यमान रही है।

संदर्भ

[1].प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक - डॉ. विमल मोहिनी श्रीवास्तव, पृष्ठ 49

[2].विष्णु पुराण - प्रथम अंश - अध्याय 22, श्लोक 68-72

[3].'मनोरमा', इलाहबाद, अप्रैल 1979

[4].भारतीय कला प्रतीक - डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, पृष्ठ 23

[5].'मिलसा टोप्स' - कर्निधम, पृष्ठ 11

[6].'श्री वत्स' भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक - डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव

[7].'मिलसा टोप्स' - कर्निधम, पृष्ठ 231

[8]."Chakradhwaj" The Wheel flak of India- Dr. V.S. Agrwal Introduction

[9].भारतीय कला प्रतीक - डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, पृष्ठ 87

[10]. 'हर्षचरित' एक सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 36

[11]. Symbolism of the Easst and Weast -1, Murrey P. 191

[12]. 'श्री' जगदीश चन्द्र, पृष्ठ 41

[13]. भारतीय कला प्रतीक - डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, पृष्ठ 106

[14]. वही, पृष्ठ 116

[15]. Life in Sanchi Sculpture and A.L. Shrivastav P.10

[16]. कला निबंध - डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ 120
[17]. भारतीय मूर्तिकला का परिचय - डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ 95-97
[18]. वही, पृष्ठ 98
[19]. 'Symbole' A Coomarswamy Syntheasis (Eassay)
[20]. कला निबंध - डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ 120
[21]. 'चित्र सूत्र' विष्णु धर्मात्तर पुराण